" सार्थक सिनेमा को साहित्य मान लीजिए; क्या आपत्ति है ? "

डॉ.संजय निमावत,
विभागाध्यक्ष,
श्रीमती पी.एन.आर.शाह महिला आर्ट्स & कॉमर्स कालेज,
पालिताना, गुजरात |
ईमेल-smnimavat2011@gmail.com

साहित्य क्या है ?, उसका काम क्या है ?, उसकी सार्थकता क्या है ?, उसकी उपादेयता क्या है ? आदि सवालों और उसके जवाबों से हम सब अवगत हैं | साहित्य को साहित्य बनाने वाले सभी पहलुओं को हम सब जानते हैं | साहित्य के अंतर्गत हम अक्षरों, शब्दों, वाक्यों और भाषा के द्वारा लिखित-रचित और बाद में पुस्तक के रूप में प्रकाशित सामग्री को साहित्य कहते हैं | इस लिखित सामग्री को उसकी बनावट और बुनावट के आधार पर, उसके लक्षणों के अनुसार, उसके भाव और शिल्प के आधार पर और कथ्य के आधार पर उसका साहित्यिक स्वरूप निश्चित होता है—यथा कहानी,उपन्यास,नाटक,निबंध आदि आदि | इस श्रेणी में उन प्रकाशित पुस्तकों को साहित्यिक नहीं मानते जिनमें साहित्य के लक्षण नहीं होते | पूरा बाह्य स्वरूप समान होने पर भी जैसे कि – उनमें शब्द,भाषा सब होता है, वह पुस्तक स्वरूप में होता है | फिर भी उन्हें साहित्य नहीं माना जाता है | सभी भाषाओँ में ऐसे लेखक हैं, जिनकी कई पुस्तकें हैं, पर उन्हें साहित्यकार नहीं माना जाता | उनकी पुस्तकों को साहित्य की श्रेणी में नहीं स्थान दिया जाता | तात्पर्य यह कि केवल सामान बाह्य स्वरूप के ही कारण उन्हें साहित्य नहीं माना जाता | प्रकाशित पुस्तक अपनी साहित्यिक सार्थकता सिध्द करने पर ही साहित्य का हिस्सा बनती है |

इसका अर्थ यह हुआ कि बाह्य स्वरूप के ही आधार पर नहीं पर आन्तरिक लक्षणों के आधार पर किसी पुस्तक को साहित्य माना जाता है | इस सन्दर्भ में मेरा आशय यह है कि सार्थक सिनेमा को साहित्य मानने में क्या आपत्ति है ? जिस फिल्म की पटकथा सुन्दर है, कहानी सुन्दर है, पात्र अच्छे हैं, जिसका उदेश्य सुन्दर है, अपने समग्र प्रभाव में जो फिल्म किसी साहित्यिक कृति जैसा ही प्रभाव समाज-मानस पर छोडती है; ऐसी फिल्मो को साहित्य का ही अंग या उसका एक प्रकार(विधा) मानने में क्या आपत्ति है ? एक उत्तम साहित्य कृति की जो सार्थकता होती है, वैसी ही सार्थकता क्या ऐसी उत्तम फिल्मों की भी नहीं होती है ? फिर उसे एक साहित्य-कृति समझने, मानने में क्या आपत्ति हो सकती है ?

ऐसी कुछ फिल्मों का उल्लेख यहाँ उचित रहेगा | अगर पुरानी फिल्मों की बात करें तो आरोहण, 36चौरंगी लेन, अंकुर, परजानिया, अर्ध सत्य, स्पर्श, धारावी, रुदाली, कथा आदि कई फिल्मे ऐसी है, जिन फिल्मों ने समाज-मानस पर साहित्यिक प्रभाव छोड़ा है | इस श्रुंखला में पिछले कुछ वर्षों में आई फिल्मों का भी उल्लेख हो सकता है | यथा-- डोर, उत्सव, वोटर, फायर, मोंसून वेडिंग, रेन कोट, अस्तित्व, माझी- ध माउन्टेन मेन, तारे जमीं पर, नील बटे सन्नाटा, धनक, हिन्दी मीडियम, सीक्रेट सुपरस्टार आदि |

एक दूसरा पहलू इस प्रपत्र का यह है कि इसमें मैं उन फिल्मों की बात भी करना चाहता हूँ, जो फ़िल्में किन्हीं साहित्यिक पुस्तकों के आधार पर बनी है | उन पर इसलिए बात करना चाहता हूँ क्योंकि साहित्यिक कृतियों से बनी होने पर भी, उन फिल्मों की 'सिनेमा' के स्वरूप के रूप में अपनी खुद की सर्जनात्मकता उनमें देखी जा सकती है -- जैसे 'सारा आकाश', 'रजनीगंधा', 'आंधी', भुवन शोम' आदि |

यदि भारतीय स्तर पर देखें तो भारत में फिल्मों के प्रारंभ से अब तक साहित्यिक कृतियों के सर्वाधिक फिल्मान्तरण बांग्ला में हुए हैं | इसका मुख्य कारण यह है कि बांग्ला अन्य भारतीय भाषाओँ से इस बात में बहुत भाग्यशाली रही कि उसे सत्यजीत राय, मृणाल सेन, एवं ऋत्विक घटक जैसे महान निर्देशक प्राप्त हुए | इन लोगों ने अपनी अधिकतर फ़िल्में बंगाली भाषा की श्रेष्ठ साहित्यिक कृतिओं पर बनाई | केवल बनाई इतना ही नहीं बल्कि इनमें से अधिकांश फिल्मों का स्तर असाधारण तौर पर ऊँचा रहा | विशेषकर सत्यजीत राय की फ़िल्में तो विश्व सिनेमा में भारतीय फिल्मों को सम्मानजनक स्थान दिलवाने में सफल रही है | 'पथेर पांचाली', 'शतरंज के खिलाडी', 'सद्गति' जैसी राय की फ़िल्में न केवल साहित्यिक स्तर बल्कि व्यापक स्तर पर लोगों को पसंद आई |

हिंदी की साहित्य कृतियों पर आधारित फिल्मों की बात करें तो मुंशी प्रेमचन्द की उर्दू कहानी 'औरत की फितरत अथवा त्रियाचरित्र' पर आधारित 'स्वामी'(1941) फिल्म बनी 'स्वामी' का निर्देशन ईस्ट इंडिया कम्पनी के शीर्षस्थ निर्देशक अब्दुल रशीद कारदार ने किया | प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' पर उसी नाम से 1946 में भवानी प्रोडक्शन, मुंबई ने फिल्म बनाई | सेठ गोविन्ददासजी ने अपनी ही कृति 'धुआंधार' पर इसी नाम की फिल्म बनाई | इस फिल्म के निर्देशक थे श्रीसुकुमार चेटर्जी | स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भारत के तीन बड़े स्टूडियो में से एक न्यू थिएटर्स ने 1935 में पं. सुदर्शन के नाटक 'भाग्यचक्र' पर 'धूपछाँव' नाम से फिल्म का निर्माण किया | भगवतीचरण वर्मा के बहुचर्चित उपन्यास 'चित्रलेखा' पर से 1941 में फिल्म कोर्पोरेशन ऑफ़ इंडिया, मुंबई ने फिल्म बनाई | साहित्यिक कृति पर आधारित फिल्मों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय फिल्मों में से एक थी 'चित्रलेखा', जिसका निर्देशन केदार शर्मा ने किया था | 1959 में एक लम्बे अंतराल के बाद प्रेमचन्द की लोकप्रिय कहानी 'दो बैलों की कथा' पर एक सफल

फिल्म बनी, जिसका नाम था 'हीरा-मोती' | इसके निर्देशक थे कृष्ण चोपड़ा | 'हीरा-मोती' के पश्चात् प्रेमचन्द के कथा साहित्य पर बनने वाली अगली फिल्म थी 'गोदान', जो इसी नाम से प्रसिध्द प्रेमचन्दजी का उपन्यास था | फिर एकबार निर्देशक कृष्ण चोपड़ा ने प्रेमचंद के प्रसिध्द उपन्यास 'गबन' पर इसी शीर्षक से फिल्म बनाई | 'गबन' 1966 में बनी थी और इसके निर्माता थे श्रीसारेल और श्रीसोनथालिया | लेकिन यह दुर्भाग्य कि 'गबन' फिल्म पूरी होने से पहले ही श्रीकृष्ण चोपड़ा का निधन हो गया | किन्तु श्रीभानु प्रताप के साथ मिलकर उन्होंने इस फिल्म की इतनी अच्छी पटकथा लिखी थी कि उसके आधार पर श्रीहृषिकेश मुखर्जी जैसे श्रेष्ठ निर्देशक को पूरा करने में कोई कठिनाई नहीं हुई | दोनों उत्तम निर्देशकों की छाप इस फिल्म पर अच्छी पड़ी | चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रस्सिद्ध कहानी 'उसने कहा था' पर भी 1960 में फिल्म बनी | 'दो बीघा जमीन', 'परिणीता', 'सुजाता' और 'सीमा' जैसी फिल्मों का निर्माण करने वाले बिमल राय प्रोडक्शन ने इस को बनाया था | पर दुर्भाग्य कि स्वयम बिमल राय ने इसका निर्देशन नहीं किया | इसके निर्देशक मोनी भट्टाचार्य रहे | फिल्म कहानी के साथ उतना न्याय नहीं कर पाई | आचार्य चतुरसेन शास्त्री के प्रसिद्ध उपन्यास 'धर्मपुत्र' पर 1961 में बी.आर.फिल्म्स के बैनर में एक व्यावसायिक रूप से सफल फिल्म इसी नाम से बनी थी | यह बात देखने योग्य थी कि फिल्म की कथा में काफि परिवर्तन हो गया था | पर समाज-मानस पर सामाजिक सद्भाव का प्रभाव छोड़ने में फिल्म सफल कही जा सकती है | फणीश्वरनाथ रेणु की प्रसिद्ध कहानी 'तीसरी कसम उर्फ़ मारे गए गुलफाम' पर से 'तीसरी कसम' फिल्म को इमेज मेकर्स, मुंबई के बैनर तले बनाया गया | 'तीसरी कसम' का निर्माण हिंदी कथा साहित्य के फिल्मान्तरण में ऐतिहासिक घटना है | इसके निर्देशक थे बासु भट्टाचार्य | इस फिल्म को 1966 की सर्वोत्कृष्ट फिल्म के रूप में राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला था |

बोलती फिल्मों के प्रारंभ से हिंदी फिल्मों के प्रारंभ से हिंदी फिल्मों के स्वर्ण युग की शुरुआत हुई थी | जिसमें न्यू थिएटर्स के नेतृत्व में बोम्बे टोकीज़ एवं प्रभात स्टूडियो ने सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर एक से एक अच्छी फ़िल्में बनाई थी | जो कलात्मकता की द्रष्टि से तो उच्च कोटि की फ़िल्में थी ही साथ ही बहुत यथार्थवादी भी थीं | इन फिल्मों में इस युग (चौथा दशक) के सामाजिक यथार्थ को बहुत प्रभावशाली ढंग से दर्शाया गया था | इसके आलावा इनमें से अनेक फिल्मों में कुरीतियाँ, शोषण और गलत परम्पराओं से लड़ने का सन्देश दिया गया था | कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य का दायित्व ही इन फिल्मों के माध्यम से निभाया जा रहा था | फिल्मों का स्वरूप और साहित्य का स्वरूप भले ही अलग है, पर जब सामाजिक सरोकार की बात मुद्दा है तब ये फ़िल्में उन सरोकारों से जुडती ही नहीं उनको बखूबी निभाती भी दिखती है | जिसमें अनेक कलाएँ –जैसे संगीतकला,फोटोग्राफीकला, अभिनयकला जैसी कलाओं का मिला-जुला स्वरूप है, ऐसी फिल्म कला लिखित साहित्यकला के उत्तरदायित्व को सुन्दर ढंग से निभाती दिखती है | अभी हम

जिस चौथे दशक की फिल्मों की बात कर रहे थे उसमे महान निर्दशक वी.शांताराम ने 'दुनिया न माने'(1937), और 'आदमी' जैसी फ़िल्में बनाई | इसी प्रकार न्यू थिएटर्स ने उस समय की ज्वलंत सामाजिक समस्याओं पर अनेक विचारोत्तेजक फ़िल्में बनाई जिनका प्रारंभ 'चंडीदास'(1934) से हुआ | इस दौर में 'देवदास', दुश्मन', 'माई सिस्टर', 'प्रेजिडेंट' और 'धरती माता' आदि सम्मिलित है | इसी प्रकार बोम्बे टोकीज़ ने सामाजिक, आर्थिक समस्याओं पर अनेक फिल्मों का निर्माण किया जिनमें 'अछूत कन्या', 'झूला', 'कंगन', 'बन्धन' और 'किस्मत' आदि फ़िल्में शामिल हैं | इनके आलावा भी उस दौर में सामाजिक विषयों को लेकर अच्छी यथार्थवादी फ़िल्में बनीं | इनमें मोहन भवनानी की 'मजदुर', चंदुलाल शाह की 'देवदासी' और उन्हीं की 'अछूत'; महबूब खान जिन्होंने सागर मूवीटोन के बैनर तले 'मनमोहन' (1936) 'जागीरदार' (1937) और अपने समय की द्रष्टि से एक अत्यंत क्रन्तिकारी फिल्म 'हम, तुम और वो' (1938) बनाई जिसमें एक नारी विवाह से बाहर यौन और भावनात्मक संतोष प्राप्त करने का प्रयास करती है | हिंदी के प्रख्यात कथाकार एवं उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार के प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' पर से निर्देशक रमेश गुप्ता ने इसी शीर्षक से फिल्म बनाई |

सत्यजीत राय के उल्लेख के बिना यह प्रपत्र अधुरा रह जायेगा, हालाँकि सुप्रसिद्ध सर्जक होने से उनके सर्जन से अधिकतर लोग अवगत भी हैं पर उनकी रचनाओं का उल्लेख अनिवार्य है | प्रेमचन्दजी की दो कहानियों 'शतरंज के खिलाडी' और 'सद्गति' पर इसी नाम से राय ने फ़िल्में बनाई | इससे पहले वे विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय के प्रसिद्द उपन्यास 'पथेर पांचाली' पर इसी नाम से बहुत महान फिल्म बना चुके थे | 'पथेर पांचाली' इतनी संतुलित और अपने आप में सम्पूर्ण कृति बनी कि उसे विश्व की बेहतरीन फिल्मों में स्थान मिला | इसके आलावा उपन्यासों पर आधारित राय की अन्य फ़िल्में 'अपराजिता' और 'अपुर संसार', रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास पर आधारित फिल्म 'घरे बाईरे' और उन्हीं की उपन्यासिका 'नष्टनीड़' पर आधारित फिल्म 'चारुलता', ताराशंकर बंदोपाध्याय के उपन्यास पर आधारित फिल्म 'अभिजन', शरदेन्दु बेनर्जी के उपन्यास पर आधारित फिल्म 'चिड़ियाखाना', सुनील गंगोपाध्याय के उपन्यासों पर आधारित 'अरन्येर दिन रात्रि' और 'प्रतिद्वंद्वी', शंकर के उपन्यास पर आधारित 'सीमाबद्ध', विभूतिभूषण बंदोपाध्याय के उपन्यास पर आधारित 'अशनि संकेत' इत्यादि भी उपन्यासों के सफल फिल्मान्तरण हैं |

इससे आगे बढकर नव सिनेमा आन्दोलन(1969) ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई | जब भारतीय सिनेमा और विशेष रूप से हिंदी सिनेमा व्यावसायिक फार्मूले से जकड़ कर एकरस हो चूका था उस वक्त उसमें चित्रित यथार्थ, कथानकों और उद्देश्यों को बदलने और वास्तविक भारत के निकट लाने में नवसिनेमा आन्दोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई | "शायद उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उसके माध्यम से भारतीय दर्शक अपनी सांस्कृतिक, भाषाई और भौतिक विविधताओं को खोज पाए | वे अलग-

अलग प्रान्तों के लोगों, मौसम, संगीत, मिथकों और जीवनशैलियों से परिचित हो पाए |"(1) 'भुवन शोम' को 1969 के लिए सर्वोत्तम निर्देशक और सर्वोत्तम अभिनेता के राष्टीय पुरस्कार प्राप्त हुए | इसके साथ ही 'भुवन शोम' व्यावसायिक द्रष्टि से भी एक अत्यंत सफल फिल्म सिद्ध हुई | नवसिनेमा आन्दोलन के दौरान अनेक उत्कृष्ट फिल्मों का निर्माण हुआ | इनमे ऊपर उल्लिखित फिल्मों के आलावा प्रमुख थीं – बासु चेटर्जी की 'रजनीगंधा' और 'कमला की मौत', मृणाल सेन की 'एक अधूरी कहानी', निर्मल वर्मा की कहानी 'माया दर्पण' पर निर्देशक कुमार शाहनी ने 1972 में फिल्म बनाई थी | अवतार कॉल द्वारा निर्देशित 'सत्ताईस डाउन' (वाराणसी एक्सप्रेस) जो हिंदी के प्रसिद्द कथाकार रमेश बक्षी के लघु उपन्यास 'अठारह सूरज के पौधे' पर आधारित फिल्म है | यह फिल्म 1974 में रिलीज़ हुई थी और नवसिनेमा आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी गई थी | इस फिल्म को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा गया था | नवसिनेमा आन्दोलन के फिल्मकारों ने यदि किसी साहित्यकार की कृतियों पर सर्वाधिक फ़िल्में बनाई है तो वे कमलेश्वर ही हैं | कमलेश्वर की 'बदनाम बस्ती', 'तलाश' और 'डाक बंगला' पर फ़िल्में बनाई गई जिनमें से दूसरी कहानी है, शेष दो उपन्यास है | इन तीनों में से 'फिर भी' पर बनी इसी नाम की फिल्म को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई | शिवेन्द्र सिन्हा इस के निर्देशक थे | मणि कॉल की 'उसकी रोटी', 'आषाढ़ का एक दिन' और 'दुविधा', बासु भट्टाचार्य की 'अनुभव' और 'अविष्कार', राज भाटब्रोस की 'त्रिसंध्या', शिवेंद्र सिन्हा की 'फिर भी', प्रेम कपूर की 'बदनाम बस्ती', बाबुराम इशारा की 'चेतना' और 'जरूरत', राजिंदरसिंह बेदी की 'दस्तक', श्याम बेनेगल की 'अंकुर', 'निशांत', 'मंथन', 'मंडी' और 'त्रिकाल', गोविन्द निहलानी की 'आक्रोश' और 'अर्धसत्य', भीमसेन की 'घरौंदा' और सईद मिर्ज़ा की 'अल्बर्ट पिंटू को गुस्सा क्यों आता है?' और सलीम लंगड़े पे मत रो', महेश भट्ट की 'अर्थ' और 'सारांश' को भी इसी में स्थान दिया जाता है | नवसिनेमा आन्दोलन के सर्वाधिक सफल निर्देशक बासु चटर्जी का कहना था, "नवसिनेमा का कार्य व्यावसायिक फिल्मों का मार्गदर्शन करना है | सारी दुनिया में कलात्मक फिल्मों ने नई विचारधारा, नए द्रष्टिकोण, नई तकनीक, नई कल्पनाओं और नई निर्माण व्यवस्था को जन्म दिया है, जिन्हें बाद में व्यावसायिक सिनेमा ने अपना लिया | स्वस्थ सिनेमा के विकास के लिए कलात्मक सिनेमा को ही आगे आना होगा और मार्गदर्शन करना होगा |"

इस प्रकार वित्तीय और आलोचनात्मक दोनों प्रकार की सफलताओं से प्रारंभ हुए आन्दोलन की दशा कुछ वर्ष पूर्व वास्तव में चिंता का विषय थी किन्तु पिछले १५-२० वर्षों में उभरे नए निर्देशकों की 'मिस्टर एंड मिसेज अय्यर', मोनसुन वेडिंग', 'इक़बाल', हजारों खाहिशें ऐसी' और 'फुटबोल शुटबोल', निर्देशक केतन मेहता द्वारा बनी फिल्म 'माँझी ध माउंटेन मेन' और मशहूर चित्रकार राजा रवि वर्मा के जीवन पर बनी फिल्म 'रंग रसिया', आमिरखान द्वारा निर्मित-निर्देशित 'तारे जमीं पर' तथा 'थ्री इडीयटस', पवन

कृपलानी द्वारा निर्देशित 'फोबिया', अश्विनी लायर निर्देशित 'नील बटे सन्नाटा', नागेश कुकुनूर निर्देशित 'धनक', संकेत चौधरी की 'हिंदी मीडियम', अद्वैत चंदन निर्देशित 'सीक्रेट सुपरस्टार' जैसी फिल्मों की सफलता ने इस मृतप्राय आन्दोलन को नई दिशा और प्राण दिए हैं | अब स्थिति निराशा जनक नहीं है जैसी कुछ वर्ष पूर्व नजर आती थी | निर्देशकों की एक नई साहसिक पीढ़ी ने इस आन्दोलन को सशक्त रूप से आगे बढाने की जिम्मेदारी अब अपने हाथों में ले ली है |

साहित्य और सिनेमा दो बाह्य रूप से भिन्न कला रूप हैं | पर अंततोगत्वा एक ही उपादेयता से जुड़े माध्यम हैं | फिल्म इतिहास में इसके अनेकानेक उदहारण मौजूद हैं जब कृतियों का सफल फिल्मान्तरण किया गया है | भारतीय सिनेमा ने इस बात को बड़ी गहराई से महसूस किया कि हिंदी कथा साहित्य के रूप में कहानियों का एक अक्षय भंडार उपलब्ध है | यही कारण है कि मृणाल सेन जैसे ख्यातिप्राप्त निर्देशक ने प्रेमचन्द की सुप्रसिद्ध कहानी 'कफ़न' के आधार पर कन्नड़ में एक फिल्म का निर्माण किया | इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ नवसिनेमा आन्दोलन ने भारतीय सिनेमा को अनेक प्रकार से प्रभावित किया और नए अधिक सार्थक प्रकार से रूढीचुस्त सिनेमा का मार्ग प्रशस्त किया वहाँ उसका एक महत्वपूर्ण योगदान यह भी रहा कि उसने साहित्य और विशेष रूप से हिंदी साहित्य पर आधारित अनेक उल्लेखनीय फ़िल्में दी जिनका स्थायी महत्व है | एक बार फिर साहित्याधारित फ़िल्में बन सके इसके लिए नवसिनेमा आन्दोलन जैसे एक और आन्दोलन की आवश्यकता है | हालाँकि सकारात्मक बात यह है कि पिछले कुछ वर्षों में फिल्मों में एक नई लहर देखी जा रही है जिसके कारण यह आशा बंधी है कि एक बार फिर साहित्य पर आधारित गंभीर फिल्मों का निर्माण होगा | देशभर में अनेक मल्टीप्लेक्स सिनेमाओं के निर्माण से भी आज 'कला फिल्मों' के निर्माण, वितरण और प्रदर्शन के लिए पहले के समय से ज्यादा बेहतर स्थितियाँ मौजूद हैं | अतः आज परिद्रश्य उतना निराशाजनक नहीं जितना कि वह कुछ समय पहले था | आज एकबार फिर फिल्मकारों की नई पीढ़ी अत्यंत यथार्थवादी और प्रयोगात्मक फिल्मों का निर्माण कर रही है जो बम्बइया सिनेमा के चिरपरिचित मुहावरे से नितांत भिन्न हैं | इन नए निर्देशकों ने क्षीण पड गये कला फिल्म आन्दोलन को आगे ले जाने का बीड़ा उठाया है | इसलिए आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में ही ये निर्देशक साहित्य के आधार पर कुछ श्रेष्ठ फिल्मों का निर्माण करेंगे और इस प्रकार बड़े पैमाने पर साहित्य के फिल्मान्तरण की जो परम्परा नवसिनेमा आन्दोलन से प्रारंभ हुई थी वह आगे बढ़ सकेगी |

निष्कर्षतः यह कहना है कि साहित्य और सिनेमा सर्जक की अभिव्यक्ति के ही माध्यम हैं | वह अभिव्यक्ति चाहे लिखित शब्दों के रूप में हो या चाहे संगीत,गीत,संवाद और द्रश्यों के रूप में हो; है तो सर्जक की अभिव्यक्ति ही | दोनों का काम अगर अभिव्यक्ति और आशय अगर समाज को एक उत्तम विचार या समाज-मानस के निर्माण का ही काम करना है तो फिर जिस तरह से साहित्य के अंतर्गत उसके भिन्न-

भिन्न स्वरूपों के आधार पर अलग-अलग विधाओं का स्वीकार किया गया है –यथा कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, रिपोर्ताज, संस्मरण, एकांकी – वैसे ही एक और स्वरूप के रूप में साहित्यिक अर्थ में 'सार्थक' सिनेमा को साहित्य की ही एक विधा या साहित्य का ही एक अंग मानने में क्या आपत्ति हो सकती है | मेरी मति और विचारों के अनुसार इस प्रपत्र के माध्यम से मैंने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं | हो सकता है कि ये विचार एकांगी या क्षतिपूर्ण हो पर आशा करता हूँ विद्वतजन इन विचारों को अपनी उदारता से क्षम्य समझकर स्वीकार करेंगे |

सन्दर्भ : 1 'हिंदी साहित्य और सिनेमा' – पृष्ठ -10

(द सिनेमाज ऑफ़ इंडिया, पृ. 146)

लेखक - विवेक दुबे, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली |

प्रपत्र का सारांश

शीर्षक : " सार्थक सिनेमा को साहित्य मान लीजिए; क्या आपत्ति है ? "

साहित्य को साहित्य बनाने वाले सारे पहलुओं को अगर हम किसी फिल्म में पाते हैं तो क्या वह साहित्य-कृति ही नहीं समझी जा सकती ? किसी साहित्यिक कृति को उसकी लिखित सामग्री के ही आधा पर, उसकी बनावट और बुनावट के आधार पर, उसके लक्षणों के अनुसार, उसके शिल्प और भाव के आधार पर और उसके कथ्य के आधार पर ही हम उसे साहित्य-कृति मानते हैं | इन सभी की विविधता के आधार पर फिर उसकी विधा (स्वरूप) निश्चित होती है, जिन्हें हम कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि नामों से अभिहित करते हैं | इसी प्रकार की बाह्य रूप से समान सामग्री – यथा शब्द, वाक्य, शैली आदि का लिखित स्वरूप-- की कई पुस्तकों को साहित्य नहीं भी समझा जाता है; इस बात से भी हम सब अवगत हैं | अर्थात बाह्य रूप से सामान होने पर भी उस सामग्री या कहो; पुस्तक को हम साहित्य नहीं मानते क्योंकि ; उसके आतंरिक लक्षणों और गुणों में वह 'स-हितस्य'(साहित्य) न होने के कारण उसे साहित्य नहीं समझा जाता |

इसका अर्थ यह हुआ कि बाह्य स्वरूप के ही आधार पर नहीं पर आतंरिक लक्षणों के आधार पर किसी पुस्तक को साहित्य माना-स्वीकारा जाता है | इस विचार के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो सिनेमा का बाह्य स्वरूप लिखित पुस्तक से भले ही अलग हो पर साहित्य के आतंरिक गुणों के सत्व और स्तर से अगर कोई फिल्म एक माध्यम के रूप में सत्वशील हो तो उसे एक साहित्य-कृति मानी जानी चाहिए | क्योंकि बाह्य रूप भले ही भिन्न-भिन्न हो पर श्रेष्ठ साहित्य-कृति और श्रेष्ठ फिल्म के आतंरिक लक्षण और प्रभावान्विति अगर समाज-मानस पर एक सा प्रभाव छोडती है तो उस सार्थक फिल्म को साहित्य का एक स्वरूप ही समझा जाना चाहिए ऐसा मेरा नम्र विचार है |

इस प्रपत्र में मैंने आगे दो प्रकार की फिल्मों के उदहारण अपनी बात की पुष्टि के लिए दिए हैं | एक वे फ़िल्में जो बिना किसी साहित्यिक कृति के आधार पर बनीं हैं और दूसरी वे फ़िल्में जो किसी साहित्यिक कृति के आधार पर, उसके रूपांतरण के रूप में बनी हैं |

साहित्यिक कृति के आधार पर बनी फिल्मो में मैंने पुरानी फिल्मों से लेकर आधुनिक समय की फिल्मों तक के सारे उदहारण देकर अपनी बात रखी है |

बिना किसी साहित्यिक कृति के आधार पर बनी उन फिल्मों की बात भी मैंने की है जो साहित्यिक कृति के आधार बिना भी निर्देशकों की सार्थक सफलता के रूप में किसी उत्तम साहित्य-कृति से बिलकुल कम नहीं है क्योंकि इन फिल्मों ने समाज-मानस पर किसी साहित्य-कृति सा ही उत्तम प्रभाव डाला है | इन फिल्मों के उदाहरणों से मैंने यह समझाने का यत्न किया है कि इन फिल्मों ने समाज का साहित्य-कृति की तरह पथ प्रदर्शन किया है | नवसिनेमा आन्दोलन और वर्तमान समय की फिल्मों के यथार्थवादी निर्देशकों की फिल्मों के उदहरणों से मैंने अपनी बात स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है | निष्कर्षतः साहित्य और सिनेमा सर्जक की अभिव्यक्ति के ही माध्यम हैं | वह अभिव्यक्ति चाहे लिखित शब्दों के रूप में हो या चाहे संगीत, नृत्य, गीत, दश्यों और संवादों के रूप में हो; है तो सर्जक की अभिव्यक्ति ही | दोनों का काम अगर अभिव्यक्ति है और आशय, उद्देश्य समाज-मानस का निर्माण करना, उसे मनोरंजित कर उत्तम दिशा में ले जाना है तो फिर ऐसी उत्तम फिल्मो को साहित्य का अंग, एक स्वरूप (विधा) माना जाना चाहिए |